कला का राजनीतिकरण करती सरकारें

अमेरिका में जार्ज फ्लायड की हत्या के बाद , नस्लवाद के खिलाफ बड़े पैमाने पर विरोध प्रदर्शन हुए। इन प्रदर्शनों की दिशा इतिहास के उन व्यक्तित्वों की ओर मुड़ी , जिन्होंने कभी नस्लवाद को हवा दी थी। उनकी मूर्तियों को उजाड़ दिया गया , ढहाया गया , ध्वस्त किया गया और नदियों में फेंक दिया गया। जातिवाद और नस्लवादी इतिहास के सबूतों को नष्ट करके विनाशकारी क्रोध ने इन प्रतीकों की भौतिक स्मृति को तो मिटा दिया , परन्तु उनके दुष्कृत्यों को सार्वजनिक जगत् से परिचित कराने के लिए कुछ भी नहीं किया। इस प्रकार का विरोध गुलामी की प्रथा , उपनिवेशवादी कट्टरता और इतिहास में काले और भूरे वर्ण को हेय समझे जाने के बिन्दु को विचारात्मक बनाने में असमर्थ रहा।

औपनिवेशिक काल के भारत में भी गुलामी की प्रथा रही है। ऐसे असुविधाजनक सच का सामना सरकारी समर्थन के साथ किया गया है। एक ऐसी सरकार , जिसने औपनिवेशिक प्रतीकों को अपमानजनक पाया , उत्तरी दिल्ली के कोरोनेशन पार्क से एक मूर्ति को हटा दिया ; एक ऐसी सरकार जिसने ऐतिहासिक मस्जिद को गिराने की अनुमति दी। पता नहीं क्यों यही सरकार ताजमहल को देश का प्रतिष्ठित स्मारक घोषित करती है। जहाँ विध्वंस संभव नहीं था , वहाँ नाम बदल दिए गए। इस प्रकार के काम भारतीय राजनीति की तरह ही आवेगी और विचारहीन रहे हैं।

विडंबना देखिए कि मूर्तिकला जैसी बारीक कला , राजनीतिक प्रतिमा के एक बेशर्म बहाने में बदलती गई। 1498 में माइकल एंजेलो को पिएटा की मूर्ति बनाने का काम दिया गया था , जिसकी बारीकी पर विचार करने में उन्हें दो साल लग गए थे। मायावती ने भी एक मूर्तिकार से अपनी और अंबेड़कर की अनेक प्रतिमाएं बनवाईं। पिएटा की मूर्ति को देखने के लिए सालाना सत्तर लाख पर्यटक आते हैं , और इसे अभी भी पुनर्जागरण कला की उत्कृष्ट कृति माना जाता है।

भारत में जिस आसानी से मूर्तियों को लगाया व हटाया जाता है , उससे ये किसी फिल्म का सेट लगती हैं। यह भी तब , जब राजनीतिक इतिहास में उनकी स्थिति विवादास्प्द रही हो। अस्थायीत्व के किसी भी डर को अब वास्तुकला की स्मारकीयता प्रदान कर दी जाती है। इनको सरदार पटेल के स्मारक की तरह इतना वजनदार बना दिया जाता है कि

लोगों के मन में असहमति की गुंजाइश ही न रहे। 60 मंजिला इमारत जितनी ऊँची प्रतिमा गढ़ने के बाद , इतिहास और ऐतिहासिक चरित्रों से निपटने के कोई और तरीके हैं , जो एक अधिक प्रभावी समावेशी दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हों ?

भारत का दुर्भाग्य रहा है कि यहाँ कला का राजनीतिकरण किया जाता है। यहाँ कलाकारों को संसद में म्यूरल बनाने के काम में लगा दिया जाता है , लेखकों को जीवित नेताओं की जीवनियाँ लिखने के लिए नियुक्ता किया जाता है , और वास्तुकारों को राजनीतिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए विधायी भवनों का डिजाइन बनाने में लगा दिया जाता है। निजी या राजनीतिक लाभ के लिए इतिहास का शर्मनाक दुरुपयोग कला और कलाकार , दोनों के लिए ही अपमानजनक है। अफसोस की बात है कि इतिहास में हेरफेर से जब परहेज नहीं रहा , तो फिर मूर्तियों की प्रासंगिकता की लड़ाई में क्यों किया जाएगा ? अगर सरदार पटेल की प्रतिमा गढ़ना मोदी के लिए और अंबेडकर की प्रतिमा मायावती के लिए महत्वपूर्ण रही , तो आने वाले समय में अगर किसी ऐतिहासिक प्रतिमा को माइक्रोसॉफ्ट के सत्या नडेला की मूर्ति से प्रतिस्थापित कर दिया जाए , तो हमें हैरान नहीं होना चाहिए।

'द टाइम्स ऑफ इंडिया' में प्रकाशित गौतम भाटिया के लेख पर आधारित। 26 जुलाई , 2020